साहित्यिक पत्रिकाओं की दशा-दिशा

*डॉ अनिल अग्रवाल

पत्रकारिता और साहित्य के पारस्परिक अनुशीलन की चर्चा प्राय: की जाती है। वस्तुतः दोनों है भी एक ही सिक्के के दो पहलू। आज जब पत्रकारिता अपने उद्देश्य को छोड़कर व्यवसाय के रूप में पहचाने जाने लगी है तब साहित्यिक पत्रकारिता की दशा किस दिशा की ओर जा रही है, इसका हम यहाँ अध्ययन करेंगे।

“यह पृष्ठभूमि आज की हिन्दी पत्रकारिता की प्रवृत्तियों का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक है। आज किसी भी समाचार पत्र अथवा पत्रिका का प्रकाशन और संचालन व्ययसाध्य हो गया है और पत्रकारिता की योग्यता के स्थान पर पूँजी निवेश की क्षमता और व्यावसायिक कुशलता पत्र की लोकप्रियता के लिए अधिक आवश्यक हो गयी है। "[1]ऐसे में साहित्यिक पत्रकारिता कहाँ अपना स्थान बना रख पाती है। यह विचारणीय प्रश्न है। "आज पहला स्थान इस बात को दिया जाता है कि पत्र का स्वरूप सुन्दर हो फिर यह है कि वह अधिक से अधिक लोगों में बिके। बिक्री के लिए अच्छा स्वरूप आवश्यक है। आज की हिंदी पत्रकारिता इस मामले में पीछे नहीं है"[2] किन्तु क्या साहित्यिक पत्रकारिता आज व्यावसायिक पत्रकारिता के सामने टिक कर खड़ी रह पाती है या अपना दामन छुड़ा लेती है? यह बात साहित्यिक पत्रकारिता के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

"देश के विभिन्न भागों से आज अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन हो रहा है। साहित्यकार बड़े उत्साह से इन पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ करते हैं। कुछ समय तक ये पत्रिकाएँ नियमित रूप से निकलती रहती है किन्तु अचानक या तो उनकी नियमितता में अवरोध आ जाता है या फिर वे बंद हो जाती हैं। बीच रास्ते में ही दम तोड़ देने वाली ऐसी साहित्यिक पत्रिकाओं की सूची बहुत लम्बी है।"[3] आखिर ऐसा क्यों होता है? इसके क्या कारण है? लघु पत्रिकाओं की वे क्या दशाएँ है जो उनके समक्ष अस्तित्व का संकटउत्पन्न कर देती है? वर्तमान परिपेक्ष्य में इन प्रश्नों का विचार किया जाना आवश्यक है। " देखा जाता है कि जब किसी साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया जाता है वह अतीव उत्साह के साथ किया जाता है। पत्रिका के प्रकाशन के लिए आवश्यक

साधन सुविधा उसके प्रचार-प्रसार उसकी निरन्तरता विज्ञापन प्राप्ति अथवा ग्राहकी का सही अनुमान किए बिना मात्र एक दो अंक की सामग्री लेकर प्रकाशित की गई प्रत्येक पत्रिका का यही परिणाम होता है कि वह थोड़े से समय तक चलने के बाद बंद हो जाती है। "[4]

"इसके कारणों में प्रमुख रूप से यह जाना जा सकता है कि अतीव उत्साह से सम्पादक लोग पत्रिका के एक-दो अंकों के लिए तो अर्थ की व्यवस्था सहयोग से कर लेते हैं या फिर अपनी जेब से कर लेते हैं किन्तु इससे सदैव निरन्तर उत्साहित रह कर चलाना सम्भव नहीं होता। मित्र लोग भी थोड़े से समय बाद अर्थ व्यवस्था से घबराकर हमें हतोत्साह करना आरम्भ कर देते हैं।" हमें पता चलता है कि हमने पत्रिका के भविष्य के विषय में बहुत बातों का या तो अनुमान ही नहीं किया या फिर गलत अनुमान किया और भविष्य का पूर्वानुमान न किए जाने से साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के समक्ष अस्तित्व का संकट उत्पन्न होता है। "[5]

यह भी देखने में आता है कि अपने उत्साह, साहित्यिक अनुराग के कारण कुछ साहित्यकार अपने प्रयत्न से अर्थ की व्यवस्था भी कर लेते हैं। छोटे बड़े साहित्यकारों से रचनाएँ भी प्राप्त कर लेते हैं और साहित्यिक पत्रिका का एक साफ सुथरा स्तरीय अंक हमारे सामने आ जाता है। अनेक बड़ी पत्रिकाओं की तुलना में पत्रिका की प्रकाशित सामग्री का स्तर भी कुछ कम नहीं होता। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह पत्रिका साहित्य के पाठकों तक पहुँच पाती है? कदाचित् नहीं, क्योंकि ऐसी पत्रिका सम्पादक के परिचितों, चंद साहित्यकारों, गिने चुने ग्राहकों और समाचार पत्रों के समीक्षा स्तम्भों तक तो पहुँच जाती है,

लेकिन उन लोगों तक नहीं पहुँच पाती जिन्हें वास्तव में उसकी जरूरत है। वस्तुतः साहित्यिक अभिरुचि का युवा वर्ग, नवोदित साहित्यकार तथा आम पाठक उससे प्राय वंचित रहता है। कारण की लघु पत्रिका के पास उसके प्रचार-प्रसार का कोई नेटवर्क नहीं होता। पहले से कोई ऐसी व्यवस्था नहीं होती कि उसे वांछित पाठक मिल जाए। "इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि साहित्यिक लघु पत्रिकाओं के पास न तो मुद्रण की उच्च स्तरीय सुविधा मौजूद होती है और न साज सज्जा के साधन ही। व्यावसायिक पत्रिकाओं के समान तड़क-भड़क और साज सज्जा तो उसे चाहिए भी नहीं किन्तु कम से कम बुक स्टाल पर दूसरी पत्रिकाओं के साथ उसे भी रखा जा सके इतना तो वांछित है ही, वह भी उसे प्राप्त नहीं।'[6]

"साहित्यिक पत्रकारिता का एक पहलू यह भी है कि अनेक साहित्यकार साहित्य क्षेत्र में अपनी पहचान बनाने अपनी ओर अपनी मित्रों की रचनाएँ प्रकाशित करने अथवा किसी वाद विशेष की स्थापना के लिए पत्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं। वस्तुतः साहित्यिक पत्रिकाओं का प्रकाशन कोई

व्यक्तिगत प्रचार प्रशंसा या व्यक्ति पूजा का माध्यम नहीं है। यह किसी वाद विशेष के प्रचार का मंच भी नहीं। इसके प्रकाशन में साहित्यिक पठनीयता की अभिवृद्धि साहित्यिक चेतना का विस्तार, सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावना के प्रचार की प्रतिबद्धता निहित होनी चाहिए। "[7]उद्देश्यहीन तरीके से अपनी आकांक्षा पूर्ती अथवा यशोगान के लिए पत्रिका को अस्त्र बनाया जाना उसके लिए घातक है, सिद्ध हो रहा है। "अनेक बार यह भी देखने में आता है कि लघु पत्रिका का सहारा लेकर कुछ मित्र निजी प्रकाशन, समारोहों अथवा व्यक्तिगत आवश्यकता की पूर्ति के लिए अर्थ की व्यवस्था करते रहते हैं। ऐसे व्यक्ति लघु पत्रिका आन्दोलन को भारी ठेस पहुँचाते हैं। साहित्य की श्रीवृद्धि में उनकी भूमिका नगण्य होती है। साथ ही उन्हें आर्थिक सहयोग के लिए राजनीतिज्ञों के दरवाजे भी खटखटाने पड़ते हैं। ऐसे प्रयास साहित्यकारों की गरिमा को नष्ट करते हैं और लघु पत्रिका के समक्ष संकट उत्पन्न करते हैं। "[8]

आखिर इन समस्याओं के क्या निराकरण हो सकते हैं? ये पत्रिकाएँ किस तरह साहित्य जगत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए रख सकती है? इसके लिए आवश्यक है कि सम्पादक अपनी संकल्प शक्ति से काम लें। यह सही है कि साहित्यिक लघु पत्रिकाओं के प्रकाशकों एवं सम्पादकों के पास साधन सीमित है, न तो उनके पास विज्ञापन की व्यवस्था है और न साज सज्जा और तड़क भड़क वाली मुद्रण व्यवस्था। उनके पास प्रचार-प्रसार का नेटवर्क भी नहीं। किन्तु फिर भी सम्पादकों को हौसला रखना चाहिए। क्योंकि वस्तुतः यह एक सतत संघर्ष का मार्ग है। ऐसा मार्ग जिसपर धैर्य और सम्बल के साथ ही बढ़ा जा सकता है।संकल्प शक्ति के समक्ष कोई भी बाधा नहीं ठहर सकती। साहित्यिक पत्रिकाओं के भविष्य को आशाजनक ढंग से संवारा जा सकता है ताकि उनके समक्ष कभी अस्तित्व का संकट उत्पन्न ही न हो।

इसके लिए आवश्यक है कि पत्रिका के प्रकाशन से पूर्व प्रकाशन का उद्देश्य तय कर लिया जाए। ऐसी पत्रिकाओं का प्रकाशन विशुद्ध रूप से साहित्य के प्रचार-प्रसार सामाजिक एवं साहित्यिक-चेतना तथा राष्ट्रीय भावना की अभिवृद्धि के लिए किया जाए। ऐसे किसी भी कार्य के लिए हर वर्ग का लेखक अपना सहयोग कर सकता है। "अतः साहित्यकार प्रकाशक को चाहिए कि वह साहित्यिक रुचि के अपने मित्रों को साथ रखें। इनके सहयोग के साथ शीघ्र ही पत्रिका के कार्य आसानी से पूरे होते चलेंगे। यदि आपकी लघु पत्रिका के लिएआपके पास व्यावसायिक सज्जा और तड़क-भड़क के साधन नहीं है तो न सही। उसे साफ सुथरा रूप दिया जा सकता है, अपने चित्रकार मित्रों की सहायता से जिससे पत्रिका का प्रस्तुतिकरण बेहतर ढंग से हो सके। "[9] साथ में प्रकाशकों को भी चाहिए कि वह अपनी पत्रिका को सम्पादकों और स्तम्भकारों तक ही सीमित न रखे बल्कि उसे बुक स्टालों तक भी पहुँचायें, नए ग्राहक बनाये जिससे पत्रिका को सामने अर्थ का संकट ना रहे।

अदूरदर्शिता, उद्देश्यहीनता और निरन्तर प्रयास के अभाव में साहित्यिक पत्रिका रास्ते में ही दम तोड़ देती है। अतः सम्पादक, प्रकाशक को धैर्य, संकल्प शक्ति और साहस से उसे एक पेड़ की भाँति सींचे और फिर देखें कि पेड़ पर सुस्वादु फल सफलता का जश्न बना रहे हैं।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता अपने उद्भव काल से न केवल संघर्ष करती हुई बल्कि अपने अस्तित्व की रक्षा करती हुई आज इस मुकाम पर पहुंच गई है। इस मुकाम पर पहुंचने में उन पत्रकारिता के दिव्य संपादकों का विशेष महत्वपूर्ण योगदान है जिन्होंने अपने सर्वर संहिता का त्याग कर पत्रकारिता को प्रकाशमान बनाया । इस प्रकाश ने आगे की पत्रकारिता के लिए आधार स्तंभ का काम किया है।

***सहायक आचार्य हिंदी**
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हिंडौन सिटी

संदर्भ सूची

1. कृष्ण बिहारी मिश्र ---हिंदी पत्रकारिता, पृष्ठ 4
2. अर्जुन तिवारी ---हिंदी पत्रकारिता का वृहद इतिहास, पृष्ठ 390
3. मधुमति-- जनवरी 1995, पृष्ठ 92
4. डॉ मधु धवन--- पत्रकारिता एक परिचय, पृष्ठ 17
5. मधुमति --जनवरी 1995, पृष्ठ 93
6. राजस्थान पत्रिका-- 1 फरवरी 1998, पृष्ठ 3
7. सुजाता राज-- राष्ट्रीय जागरण हिंदी पत्रकारिता का आदिकाल, पृष्ठ 118
8. डॉ. रामगोपाल शर्मा ---हिंदी समकालीन काव्य, पृष्ठ 113
9. नंद भारद्वाज-- संवाद निरंतर, पृष्ठ 22